शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जून 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

अज्ञेय, तारसप्तक और साठोत्तरी हिंदी आलोचना

डॉ.अभिषेक कुमार मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)
राजकीय महाविद्यालय
ढाढा बुजुर्ग, हाटा, कुशीनगर,
उत्तर प्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद कविता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदु है। प्रयोग शब्द बहु अर्थी है। इसके प्रमुख अर्थ हैं - प्रयोग में लगना, परीक्षण करना, अन्वेषण करना। इसका उद्देश्य है मान्य सत्य का परीक्षण और फिर परीक्षण द्वारा सत्य के नवीन आयामों का अन्वेषण। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रयोगवाद का श्रीगणेश अज्ञेय द्वारा सम्पादित और सन 1943 में प्रकाशित 'तारसप्तक' से माना जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में अज्ञेय, तारसप्तक और साठोत्तरी हिंदी आलोचना पर विचार किया गया है।

भूमिका

ख्यात विचारक कर्ण सिंह, (अध्यक्ष, वत्सल निधि) का विचार है कि "तारसप्तक की भूमिका हिंदी साहित्य में नवीन अवधारणाओं का घोषणा पत्र कही जा सकती है, जिसने परम्परा, आधुनिकता, प्रयोग–प्रगति, काव्य–सत्य, कवि का सामाजिक दायित्व, काव्य–शिल्प, काव्य–भाषा, छंद आदि की तमाम बहसों को पहली बार उठाकर साहित्यालोचन का मौलिक स्वरूप दिया।"1 अज्ञेय जी के सर्जनात्मक चिंतन की सार्थकता इस बात में है कि वह न केवल समकालीन चुनौतियों, प्रश्नाकुलताओं एवं विमर्शों से टकराते हैं वरन भविष्य की सर्जनात्मक साहित्यिक संभावनाओं के द्वार भी उद्घाटित करते हैं। (द्रष्टव्य - अज्ञेय रचनावली खंड -1, प्राक्कथन, संपादक- कृष्ण दत्त पालीवाल [ऑनलाइन उपलब्ध]) सन साठ के बाद की हिंदी आलोचना की पृष्ठभूमि का अगर विश्लेषण किया जाये तो अज्ञेय और तारसप्तक को हम एक प्रमुख भूमिका में पाते हैं। अज्ञेय और तारसप्तक का हिंदी साहित्य पटल पर उद्भव एक साथ कई नूतनताओं की घोषणा करता है। अज्ञेय जी पूर्णतः आधुनिक साहित्यकार हैं और हिंदी साहित्य में आधुनिकता की वास्तविक शुरुआत उनके चिंतन और विचार के साथ होती है। केवल रूप के ही स्तर पर ही नहीं बल्कि विषय के स्तर पर भी उन्होंने हिंदी साहित्य की दिशा और दशा दोनों को मोड़ने का कार्य किया है। 1943 में प्रकाशित तारसप्तक उसी मोड़ की एक सशक्त कड़ी है। इस विषय में रामस्वरूप चतुर्वेदी की मान्यता अत्यंत सटीक है "तारसप्तक (1943) के प्रकाशन के बाद हिंदी कविता और समीक्षा वही नहीं रही और वहीं नहीं रही।"2 अर्थात हिंदी कविता एवं समीक्षा दोनों की ही दिशा एवं दशा बदलती है तारसप्तक के प्रकाशन के साथ। जैसे नदी की धारा बड़ी तीव्र गति से प्रवाहित हो रही हो और आगे चलकर एक स्थान विशेष उसके मोड़ का कार्य करता हो तो वह

स्थान ज्यादा महत्वपूर्ण माना जाता है, ठीक यही बात प्रयोगवाद एवं तारसप्तक के विषय में भी कही जा सकती है, क्योंकि प्रयोगवाद एवं तारसप्तक ने चली आती हुई हिंदी साहित्य की धारा को मोड़ने का कार्य किया है।

प्रसिद्ध मार्क्सवादी लेखिका डॉ.निर्मला जैन का विचार है कि, "स.ही.वा.अज्ञेय शुद्ध आलोचक न होते हुए भी अपने आलोचनात्मक विचारों के लिए हिंदी आलोचना के इतिहास में इसलिए उल्लेखनीय हैं कि उन्होंने छायावादी कवियों से भी अधिक नयी कविता के आस्वाद और मूल्याङ्कन के लिए उपयुक्त नयी आलोचना के लिए आधार तैयार किया है।"3

शुक्लोत्तर आलोचना में अज्ञेय जी का योगदान निश्चित ही एक महत्वपूर्ण है। तारसप्तक में अज्ञेय जी को लेकर सात कवि थे। इन कवियों के प्रयोगवाद के बैनर तले एक मंच पर एकत्र होने का कारण बताते हुए वे लिखते हैं, "उनके तो एकत्र होने का कारण यही है कि वे किसी स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुचे हुए नहीं हैं। अभी राही हैं, राही नहीं, राहों के अन्वेषी हैं।"4 यद्यपि अज्ञेय जी यह भी मानते हैं कि इन सातों कवियों के बीच जीवन के किसी भी विषय को लेकर आपस में मतैक्य नहीं है। धर्म, राजनीति, समाज आदि के साथ कविता की विषय-वस्तु उसकी शैली, छंद और तुक आदि विषयों पर भी इनमें वैमत्य है। यही नहीं, वे जीवन और जगत के सर्वमान्य तथा स्वंय सिद्ध मौलिक सत्य को भी समान रूप से स्वीकार नहीं करते जैसे लोकतंत्र की आवश्यकता, उद्योगों का समाजीकरण, यांत्रिक युद्ध की उपयोगिता, वनस्पति घी की बुराई अथवा काननबाला और सहगल के गानों की उत्कृष्टता इत्यादि, लेकिन फिर भी वे एकत्र तथा संगृहीत हैं। उसका एक मात्र कारण अज्ञेय जी की दृष्टि में इन कवियों का कविता के प्रति अन्वेषी दृष्टिकोण है। यही अन्वेषी दृष्टि उन्हें एकता तथा समानता के सूत्र में बंधती है। एक चौकन्ने और कुशल आलोचक की भांति अज्ञेय जी अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए यह भी कहते हैं कि "इस अन्वेषी दृष्टि का तात्पर्य यह नहीं कि इस संग्रह की सभी रचनाएँ प्रयोगशीलता के नमूने हैं या कि इन कवियों की रचनायें रूढ़ि से अछूती हैं या कि केवल यही कवि प्रयोगशील हैं और बाकी सब घास छीलने वाले वैसा दावा यहाँ कदापि नहीं, दावा केवल इतना है कि ये सातों अन्वेषी हैं।"5 जहाँ राहों का निरंतर अन्वेषण हो रहा हो वहां दृष्टि तो नयी होगी। दृष्टिकोण की इसी नवीनता के कारण समकालीन समीक्षा में रचना का महत्व, रचना प्रक्रिया की छानबीन, रचनाकार और उसके परिवेश के बीच होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया आदि कुछ ऐसे विषय जुड़ गये जो स्वंय अज्ञेय जी की गहन चिंतन धारा के परिणाम थे। (द्रष्टव्य हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी)।

यद्यपि अज्ञेय जी ने स्वतंत्र आलोचक के रूप में आलोचना के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं किया। साहित्य, कला और काव्य पर उन्होंने जो भी विचार व्यक्त किये, उनके आलोचना संबंधी विचार उन्हीं विचारों की व्याख्या हैं। अज्ञेय जी में आन्दोलन और संगठन की एक विशिष्ट क्षमता थी। वे जितने बड़े रचनाकार और चिन्तक थे उतने ही बड़े व्यवस्थापक भी थे। उनकी यह प्रतिभा उन्हें भारतेंदु, पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी और अंग्रेजी के डॉ. जॉन्सन के समतुल्य खड़ा कर देती है। ये लेखक ऐसे हैं, जिनके व्यक्तित्व की प्रखर छाप समकालीन साहित्य पर ही नहीं बल्कि परवर्ती साहित्य पर

भी देखी जा सकती है। अपनी इसी प्रतिभा के बल पर अज्ञेय जी ने हिंदी में तारसप्तक के कवियों को संगठित कर एक आधुनिक भाव–बोध को जन्म दिया। त्रिशंकु(1945), आत्मनेपद(1960), अन्तरा, अवन्ती, संवत्सर, अद्यतन आदि निबंधों में उन्होंने साहित्य, कला और कविता के सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यक्त किया है। रचना सम्बन्धी जिन प्रतिमानों की चर्चा वे अपने साहित्यिक चिंतन में करते हैं, उनका पूरा–पूरा सहज निर्वाह उनके कृति साहित्य में मिल जाता है। यह एक तथ्य है जो उनके कृतिकार व्यक्तित्व के संपृक्त स्वरूप को प्रमाणित करती है, क्योंकि उनकी स्पष्ट मान्यता है कि "अंतर्विभक्ति का न होना ही व्यक्ति की स्वस्थता है और उसके सामाजिक और साहित्यिक पक्ष की सफलता भी।"6

अज्ञेय जी रचना को उसकी समग्रता में देखने के पक्षपाती हैं। इस कारण उनकी दृष्टि में व्यष्टि और समष्टि का भेद समाप्त हो जाता है। 'कला का स्वभाव और उद्देश्य' नामक निबंध में वे कहते हैं कि "कला सम्पूर्ण की ओर जाने का प्रयास है, व्यक्ति की अपने को सिद्ध प्रमाणित करने की चेष्टा है।"7 अर्थात उन्होंने कला को सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने के प्रयत्न के रूप में परिभाषित किया है। मनोविश्लेषणवादी एडलर और युंग की तरह वे कला को 'हीनता की क्षतिपूर्ति' के रूप में भी स्थापित करते हैं और लेखक से कला के प्रति आत्यन्तिक समपर्ण और आत्मदान की अपेक्षा करते हैं। इसीलिए वे कला को 'अपर्याप्तता के विरुद्ध विद्रोह' के रूप में प्रमाणित करते हैं। (द्रष्टव्य- हिंदी आलोचना का विकास- मधुरेश- पृष्ठ 202)। अज्ञेय जी की ये मान्यतायें आगे चलकर विकसित मनोविश्लेषणवादी आलोचना के लिए पृष्ठभूमि का कार्य करती हैं। कला के प्रति अज्ञेय जी का यह दृष्टिकोण साहित्य में एक नयी टेकनीक को जन्म देता है। आगे चलकर रूपवादी आलोचना में भी कला को विशेष महत्व दिया गया है। वर्तमान में जहाँ मार्क्सवादी आलोचना साहित्य में विषय पक्ष को ज्यादा महत्व देती है वहीं रूपवादी आलोचना कला- पक्ष को। इस विषय में अज्ञेय जी की दृष्टि अत्यंत संतुलित थी। वे दोनों ही क्षेत्रों में अर्थात विषय-पक्ष और कला-पक्ष दोनों में नूतनता के जनक थे। इस रूप में वे हिंदी में अंग्रेजी के कवि-आलोचक टी.एस.इलियट की भूमिका में नजर आते है जिसने अपने मौलिक चिंतन से अंग्रेजी साहित्य में एक नवीन आधुनिक युग को जन्म दिया ।(हिंदी आलोचना का विकास- मधुरेश- पृष्ठ 202-203)।

अज्ञेय जी ने अपनी कृतियों में कई मूल्यवान संकेत दिए हैं। 'कहाँ है द्वारका ?' में 'खग भाषा' शीर्षक लेख में उनका विचार है कि "निसंदेह वाक् से परे संवाद का और ज्ञानार्जन का कोई आकलन साधन भी होना चाहिए लेकिन उस तक पंहुचने के लिए वर्षों तक भाषा और छंद की मर्यादाओं की साधना करनी पड़ती है। शायद यह भी कह सकते हैं कि कुछ भी छोड़ देने के लिए उसकी सीमाओं को जानना होता है और सीमाएं जानने का उपाय तो यही है कि उसकी चरम संभावनाओं का अविष्कार कर लिया जाए।"8 अज्ञेय जी को अपने उत्तराधिकार का गहरा संज्ञान है। इस कारण उन्होंने आधुनिकता का आविष्कार रचना एवं आलोचना दोनों में परंपरा को आत्मसात करते हुए किया है।

अज्ञेय जी समग्र अर्थ में आधुनिक हैं और आधुनिकता की समस्या से सीधे टकराते भी हैं। स्वचेतना, बौद्धिकता तथा भाषिक सर्जनात्मकता

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जून 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

पर गंभीर विमर्श अज्ञेय जी के कृतित्व में मिलता है। वे एक प्रगतिशील साहित्यकार थे। साहित्य, कला और कविता पर विचार करने के साथ-साथ उन्होंने भारतीय संस्कृति पर भी विचार किया है। कुछ विद्वान भारतीय संस्कृति की शुद्धता की दुहाई प्रायः दिया करते हैं। उनके विषय में 'आधुनिक हिंदी साहित्य' में अज्ञेय जी लिखते हैं -"जो लोग भारतीय संस्कृति की दुहाई देते हैं, वे प्रायः भूल जाते हैं कि अन्य सभी संस्कृतियों की भांति भारतीय संस्कृति भी एक मिश्र और सामासिक संस्कृति है- कि संस्कृति मात्र समन्वित होती है, क्योंकि एक समन्वित दृष्टि ही उसकी एकता का आधार होती है।"9 अज्ञेय जी परंपरा को एक ऐतिहासिक घटना-क्रम न मानकर उससे प्राप्त एक जातिगत अनुभव और उससे भी अधिक एक जीवित स्पंदन मानते हैं। जिस प्रकार वे प्रयोगवाद को प्रयोगवाद कहे जाने पर विरोध करते हुए कहते हैं "हम वादी नहीं रहे। प्रयोग कोई इष्ट या साध्य नहीं है, वह साधन है। हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना कवितावादी कहना।"10 इसी प्रकार का विरोध उन्होंने प्रगतिशील आन्दोलन का भी किया है। उनका विचार है कि प्रगतिशील आन्दोलन क्रमशः 'शील' की जगह 'वाद' से ग्रस्त होता गया। इसी प्रकार का विरोध प्रगतिशील आलोचक डॉ. शिवदान सिंह चौहान ने 'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिशील' में अंतर करते हुए 'प्रगतिशील' शब्द को ही स्वीकृति दी थी।

साठोत्तरी हिंदी आलोचना

साठोत्तरी हिंदी आलोचना में जिस अस्तित्ववादी दर्शन एवं शब्दावली की भरमार होती है, उसकी पृष्ठभूमि रचना एवं चिंतन दोनों ही स्तरों पर अज्ञेय जी तैयार कर देते हैं। 'शेखर एक जीवनी', 'अपने-अपने अजनबी' नामक उपन्यासों में तथा उनकी कविताओं में भी अस्तित्ववादी दर्शन एवं उसकी शब्द्वावली उभरकर सामने आती है। ऊब, संत्रास, विसंगति, विडम्बना, अजनबीपन, मृत्यु, अकेलापन, निर्वासन, वैयक्तिकता, मनोग्रंथि आदि ढेर सारे शब्द अज्ञेय जी के साहित्य चिंतन में उभरकर सामने आते हैं। प्रयोगवाद के रूप में साठोत्तरी हिंदी आलोचना की ऐसी पृष्ठभूमि तैयार होती है, जिससे आलोचना जगत में आलोचना की कई-कई धाराओं का विकास होता है और कई-कई सूत्र निकलकर सामने आते हैं। वस्तुतः अज्ञेय जी ने प्रयोगवाद के रूप में हिंदी साहित्य में नयी आलोचना के लिए आधार तैयार किया। कवियों के लिए वे आलोचना को आवश्यक मानते हैं। तीसरा सप्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि "नयी कविता का अपने पाठक और स्वयं के प्रति उत्तरदायित्व बढ़ गया है।...परिस्थिति की मांग यह है कि कविगण स्वयं एक-दूसरे के आलोचक बनकर सामने आये।"11 अपने 'भवंती' नामक निबंध में उन्होंने अपनी इस मान्यता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "आलोचना गौण या उपजीवी कर्म भले ही हो कवि को उसकी आवश्यकता रहती है। आलोचना की अनुपस्थिति में वह मुर्झाता है, उसकी प्रतिभा मलिन होती है।"12 इस सन्दर्भ में अंग्रेजी साहित्यकार टी.एस.इलियट का विचार है कि -"If the creative mind is better than other, the reason often is that better is the more critical."13 अर्थात् रचनाकार मन यदि बेहतर है तो इसीलिए कि वह ज्यादा आलोचनात्मक है। यही कारण है कि अज्ञेय जी ने बराबर आलोचनाएँ लिखी और उनके माध्यम से विभिन्न सैद्धांतिक स्थापनाएँ भी कीं।

अज्ञेय जी ने नयी कविता का सौंदर्यशास्त्र निर्मित किया, जिस पर आगे चलकर कविता का उत्तर

आधुनिक स्वरूप निकलकर सामने आया। अपने 'आत्मनेपद' नामक निबंध में वे लिखते हैं "आधुनिक कविता पर मनोविज्ञान की गहरी छाप है। क्यों ? क्योंकि व्यक्ति और उसकी परिस्थिति में इतना कम सामंजस्य, इतना तीखा विरोध कभी नहीं हुआ और उस विरोध के दबाव की कवि के मन पर गहरी छाप है। इतनी गहरी कि वह सीधे-सीधे व्यक्त भी नहीं कर पाता है केवल ध्वनित करता है, केवल एक संकेत देता है, जिससे हम आगे बढकर उसे देख सकें।"14 नयी कविता की सौन्दर्य-चेतना का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कविता में प्रतीकों के प्रयोग पर बल दिया। आगे चलकर साठोत्तरी आलोचकों ने भी कविता में प्रतीकों की सत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया। बल्कि कविता के क्षेत्र में एक प्रकार से प्रतीकवादी आन्दोलन ही चल पड़ा तथा कविता सिम्बोलिक होने लगी।

साठ के बाद की हिंदी आलोचना में 'आम आदमी' और 'आम भाषा' को लेकर व्यापक चर्चा होती रही है। अज्ञेय जी ने भी इस पर अत्यंत गंभीरता पूर्वक विचार किया है। वर्तमान आलोचना उसी आम आदमी और आम भाषा पर विशेष चिंता प्रकट कर रही है। 'अन्तरा' में उनका विचार है कि "आम आदमी क्या होता है ? .....साहित्यकार के लिए कलाकार के लिए क्या होता है ? कला की साहित्य की आँख से जिसे भी देखो वह खास है, अद्‌वितीय है ...बल्कि जिसके देखने से ही आम खास हो जाये, वही कला- दृष्टि है। जैसे आस्थावान के लिए ईश्वर आम नहीं होता, वैसे ही कलाकार के लिए आदमी आम नहीं होता।....आम भाषा भी नहीं होती है। साधारण शब्दवली हो सकती है। साधारण इस अर्थ में कि सभी की जानी हुई हो। पर कवि के इस्तेमाल में आते ही वह विशिष्ट हो जाती है, बल्कि सर्जक प्रयोग वही है जिससे ऐसा हो जाये। जैसे कवि-दृष्टि आम आदमी को खास बनाती है, वैसे ही कवि-प्रयोग आम शब्द को खास बनाता है।"15

'यथार्थ' शब्द साठोत्तरी हिंदी आलोचना में कसौटी की भांति इस्तेमाल किया जाता रहा है। आधुनिक हिंदी आलोचना में इस शब्द का अंतहीन साधारणीकरण हुआ है। अज्ञेय जी ने भी इस शब्द पर अपने ढंग से विचार किया है। कला के सन्दर्भ में वे यथार्थ उसे मानते हैं जो व्यक्तित्त्व में से छनकर प्रेषित होता है, तभी वह कृति का अंग बनता है। बाहर दृष्टिगत होने वाला यार्थार्थ नहीं है। कविता का यथार्थ होने के लिए यह आवश्यक है कि वह यथार्थ कलाकार के अनुभव यंत्र से गुजरे। यह यथार्थ सबके लिए सामान नहीं होता। स्वयं अज्ञेय जी के ही शब्दों में, "यथार्थ पहाड़ सा भी गिरता है, ज्वार-सा भी फूटता है और रात के घने कोहरे सा दुर्भेद्य भी रह जाता है। यथार्थ में डूबे बिना यथार्थ नहीं है। अगर आप उसके बाहर हैं और उसे (ओब्जेक्टिवली) पूरा देख रहे हैं तो यथार्थ वह कहाँ है ?"16

सन साठ के बाद ही हिंदी आलोचना में साहित्य और राजनीति की भी चर्चा बराबर होती रही है। सामान्य आदमी की तरह अज्ञेय का भी यह मानना है कि मनुष्य एक सामजिक प्राणी की तरह एक राजनीतिक प्राणी भी है। वर्तमान में राजनितिक सक्रियता इतनी बढ़ गयी है कि समाज का कोई भी संवेदनशील प्राणी उससे स्वंय को असम्पृक्त नही रख सकता। कवि भी एक संवेदनशील द्रष्टा है। अतः उसकी भी अपनी राजनितिक दृष्टि होती है, जो कविता के माध्यम से प्रकट हुआ करती है। किन्तु अज्ञेय जी का मानना है कि कवि को कविता का प्रयोग

राजनीतिक ऊदेश्यों की सिद्धि के लिए नहीं वरन मानवीय मूल्यों की सीद्धि के लिए करना चाहिए। वे रचनात्मकता को महत्व देते हैं न कि राजनीति को। कारण यह है कि किसी दल विशेष से जुड़ने पर रचनाकार की स्वाधीनता भंग होती है। अज्ञेय जी की दृष्टि में कवि की ईमानदारी तभी फलितार्थ हो सकती है, जब वह दल विशेष की निष्ठा से न बद्ध होकर उसकी अनुभूति से बंध जाये। दल निष्ठा की कसौटी पर रखकर हम कवि की ईमानदारी पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगा सकते।

आज की आलोचना, मध्यमवर्गीय जीवन और समाज को लेकर विशेष प्रश्नाकुल है। अज्ञेय जी ने भी मध्यमवर्गीय जीवन की विडम्बनाओं को अपने साहित्य में चित्रित किया है और उन पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण के साथ विचार भी किया है। अज्ञेय जी का विचार है कि आज का कवि मुख्यतः मध्यमवर्ग से आता है इसलिए वह मध्यमवर्गीय जीवन का चित्रण भी करता है। यही नहीं अज्ञेय जी ने इस वर्ग को यौन-वर्जनाओं का पुंज कहा है। अपनी इन वर्जनाओं के कारण ही यह वर्ग सर्वाधिक कुंठाग्रस्त रहता है।

अज्ञेय जी ने क्षणवाद और साहित्यिक श्लीलता - अश्लीलता पर भी विचार किया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि साठोत्तरी हिंदी आलोचना भी इन्हीं बिंदुओं के इर्द-गिर्द घूमती रही है। क्षणवाद पर जो बराबर बल अज्ञेय जी ने अपनी कविता में दिया है, उसके प्रति सफाई देते हुए वे कहते हैं -"मैंने क्षण पर जो बल दिया है वह अनुभूति के प्रति सच्चाई के सन्दर्भ में यानि रचना - प्रक्रिया के सन्दर्भ में। भोक्ता के द्रष्टा होने का परिवर्तन क्षण अत्यंत महत्वपूर्ण क्षण है, वही स्रष्टा होने की पहली शर्त है। ऐसा ही क्षण साहित्य का असल वर्तमान है।"17 कहने का तात्पर्य यह है कि अज्ञेय जी की दृष्टि में क्षण का आग्रह क्षणिकता का आग्रह नहीं वरन अनुभूति की प्राथमिकता का आग्रह है।

साहित्यिक श्लीलता-अश्लीलता पर विचार करते हुए वे कहते हैं कि श्लीलता और अश्लीलता देश कालाश्रित है, जो हर समाज के लिए पृथक-पृथक होती है। इसके लिए किसी कसौटी विशेष का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। उनका मानना है कि श्लीलता और अश्लीलता व्यक्ति की दृष्टि में होती है और वस्तुतः अधूरा देखना ही अश्लील है। नैतिकता और अनैतिकता की पहचान कुछ मानदंडों पर की जाती है। वे मानदंड जो कि विकसनशील होते हैं न कि स्थिर और जड़। पुरा प्राचीन काल में नैतिकता ईश्वरपरक थी, जबकि आज के समय में उसे मानव-सापेक्ष मान लिया गया है। अज्ञेय जी की दृष्टि में कोई भी समाज मूल्यहीन नहीं हो सकता है, क्योंकि मानव का जीवन कुछ आधारभूत मूल्यों को लिए होता है। एक सच्चे रचनाकार की रचना में सौन्दर्यबोध के साथ नैतिकताबोध भी होता है।

साठोत्तरी हिंदी आलोचना में जिस देशीयता की, उपनिवेशवादी मानसिकता के विरोध की,भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा की बड़ी ही जोरदार चर्चा होती रही है, बहुत पहले अज्ञेय जी ने इस बहस की शुरुआत कर दी थी और नयी आलोचना के लिए एक मजबूत और सुदृढ़ आधार भी खड़ा कर दिया था। इस दृष्टि से वे महात्मा गाँधी की भांति सच्चे भारतीय चिन्तक हैं। जिस प्रकार गाँधी जी ने राजनीति के क्षेत्र में प्राचीन भारतीय चिंतन को मूल्यवान बना दिया उसी प्रकार अज्ञेय जी ने नए साहित्य के क्षेत्र में प्राचीन भारतीय शास्त्रीय दृष्टि को प्रासंगिक बना दिया। इसी कारण उनके साहित्यिक चिंतन में भी एक प्रकार

का शास्त्रीय औदात्य है। वे निरंतर संस्कार से युक्त होने की प्रक्रिया को ही आधुनिकता समझते हैं। मनुष्य अपनी निरंतर विकसनशील संवेदना तथा बुद्धि के कारण ही संस्कार से युक्त होता जाता है। एक लेख में अज्ञेय जी का विचार है कि "किसी मतवादी रूढ़ि से अलग धर्म की उद्भावना को मैं संसार को भारतीय चिंतन की बहुत बड़ी देन मानता हूँ।.....संसार के किसी धर्म ने मनुष्य के मानस को उतनी स्वाधीनता का वातावरण नहीं दिया, जितना भारतीय धर्म ने। किसी ने स्वस्थ जीवन की उतनी गहरी नीव नहीं डाली,जितनी भारतीय धर्म ने ।"18

अज्ञेय जी 'संस्कृति' के हिमायती हैं और उसकी उपेक्षा को किसी भी राष्ट्र के लिए घातक मानते हैं। उनका मानना है कि एक अच्छा साहित्य मूलतः एक संस्कृति की देन होता है, उसका अपना व्यक्तित्व तथा अपनी अस्मिता होती है। अज्ञेय जी को इस बात का गहरा दुःख है कि कुछ आलोचक भारतीयता के नाम पर निरी जड़ता का समर्थन करते हैं और कुछ प्रगतिशील आलोचक जड़ता के विरोध के नाम पर संस्कृति को मानने से ही इंकार करते हैं। अज्ञेय जी ने इन दोनों ही अतिवादी वृत्तियों का विरोध किया। वे भारतीयता और परंपरा दोनों पर ही प्रश्नचिन्ह लगाने वाले भारतीय विचारक हैं। उनका मानना है कि- "भारतीयता के मूल में जो भावना या भावनाएँ हैं, उनमे हमें भारतीय अस्तित्व की नगण्यता और जीवन के प्रति अवज्ञा का पथ मिलता है।"19 इसी प्रकार दूसरा सप्तक की भूमिका में वे 'परंपरा' पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए कहते हैं, "जो लोग प्रयोग की निंदा करने के लिए परंपरा की दुहाई देते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि परंपरा कम से कम कवि के लिए कोई ऐसी पोटली बांधकर अलग रखी हुई चीज नहीं है, जिसे वह उठाकर सिर पर लाद ले और चल निकले।"20

अज्ञेय जी एक कर्मनिष्ठ स्वाधीन चिन्तक थे। यही कारण है कि उन्होंने भारतीयता तथा परंपरा को उसके मूल अर्थ में अत्यंत गहराई के साथ स्वीकार किया। एक ऐसा निर्भ्रांत विचारक ही इस बात को पीड़ा के साथ महसूस कर सकता है कि " मिला बहुत कुछ सब बेपेंदी का। शिक्षा मिली, उसकी नींव भाषा, नहीं मिली। आजादी मिली, उसकी नींव आत्मगौरव नहीं मिला। राष्ट्रीयता मिली उसकी नींव अपनी ऐतिहासिक पहचान नहीं मिली।"21 अज्ञेय जी की सर्वाधिक चिंता भारतीय मानस को उपनिवेशवाद के शिकंजे से मुक्त करने की है, क्योंकि तभी भारत सांस्कृतिक क्षेत्र में ऊसर, बंजर तथा मरुस्थल बनने से बच पाएगा और उसकी स्वाधीनता भी फलवती होगी। भारत का अस्तित्व निरंतर बना रहे, उसके संस्कार उसके साथ हमेशा लगे रहें, यही अज्ञेय जी की भारतीय दृष्टि का काम्य है।

अज्ञेय जी ने आलोचक राष्ट्र के निर्माण का स्वप्न देखा था, क्योंकि आलोचना का पक्ष रमेश चन्द्र शाह के शब्दों में "यूनिवर्सल इंटेलिजेंस का, सार्वभौम बुद्धिवैभव का पक्ष है; वैचारिक स्वराज का,सांस्कृतिक आत्मविश्वास का पक्ष है।"22 यही नहीं, डॉ शाह यह भी कहते हैं अज्ञेय जी ने जिस आलोचक राष्ट्र का स्वप्न देखा था वही हिंदी आलोचना का सहज स्वाभाविक पक्ष है, "जीवन के गौरव की रक्षा के लिए परखने और मुकाबला करने की शक्ति को संगठित करने का, और इस तरह एक आलोचक राष्ट्र के निर्माण का सपना स्वतंत्रता की देहरी पर अज्ञेय ने देखा था। यह था हमारी आलोचना का सहज स्वाभाविक पक्ष।"23 । बहुत पहले श्री अरविन्द ने कहा था - 'हमें अपने को इनके (पश्चिम के) मापदंडों से

नापने की कोई जरुरत नहीं है।' अज्ञेय जी का भी यही मानना है कि हिंदी आलोचना को रचना की पड़ताल भारतीय दृष्टि से करनी चाहिए न कि पश्चिम की निगाह से। परवर्ती हिंदी आलोचना के लिए उनकी यह दृष्टि निश्चित रूप से प्रेरणा और मार्गदर्शन का कार्य करती रहेगी।

निष्कर्ष

सारतः कहा जा सकता है कि अज्ञेय जी एक मौलिक चिंतक और विचारक हैं। उनके गतिशील विचारों में अपने समय से आगे की सोच निहित है। उनके ऊपर बड़े से बड़े विचारकों और सिद्धान्तकारों का किसी प्रकार का कोई आतंक नहीं रहा। वे नूतनता के पक्षधर थे किन्तु पुरातन को एकदम एक सिरे से ख़ारिज कर देने वाले भी नहीं। अपने विचारों से उन्होंने साठोत्तरी हिंदी आलोचना के उस उत्स का कार्य किया, जिसको ग्रहण करके वह कुछ मौलिक परिवर्तनों की और बढ़ी। परवर्ती हिंदी आलोचना में जिस भाषिक आलोचना की, रूपवादी, बिम्बवादी, प्रतीकवादी, नए और लघु मानव की, क्षणवाद और कृति केन्द्रित आलोचना की बहस चली उसकी पृष्ठभूमि में अज्ञेय जी के अपने विचार निहित हैं। उन्होंने किसी गुट या दल को बनाने की चिंता नहीं की। तारसप्तक के कवि किसी दल या गुट के कवि नहीं थे तथापि वे भाव और भाषा के क्षेत्र में नूतनता के जनक थे। आज की रूपवादी आलोचना की पृष्ठभूमि कहीं न कहीं प्रयोगवाद के रूपवादी रुझान में मिल सकती है। उनकी प्रयोगशील प्रवृत्ति ने उन्हें कविता में कलात्मक प्रयोग के लिए प्रेरित किया। ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 अज्ञेय रचनावली खंड -1, प्राक्कथन, संपादक- कृष्ण दत्त पालीवाल [ऑनलाइन उपलब्ध]

2 हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ 263, रामस्वरूप चतुर्वेदी

3 हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी, पृष्ठ 83, निर्मला जैन

4 तारसप्तक की भूमिका

5 तारसप्तक की भूमिका

6 आत्मनेपद, पृष्ठ 203

7 त्रिशंकु, पृष्ठ 28

8 'आत्मनेपद' अज्ञेय, कहाँ है द्वारका ?, पृष्ठ 41

9 आधुनिक हिंदी साहित्य,संस्करण 76,पृष्ठ 25

10 दूसरा सप्तक, 195, भूमिका

11 तीसरा सप्तक, भूमिका

12 हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी, निर्मला जैन, पृष्ठ 83

13 गद्य के प्रतिमान, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी,पृष्ठ 134

14 हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी -निर्मला जैन -पृष्ठ 84

15 वर्तमान साहित्य अंक 5 (अज्ञेय)-डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पृष्ठ 96-97

16 अन्तरा, पृष्ठ 16 द्रष्टव्य वर्तमान साहित्य, अज्ञेय, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अंक 5 पेज 96-97

17 लिखी कागद कोरे, अज्ञेय, पृष्ठ 82

18 अज्ञेय : वागर्थ का वैभव: रमेश चन्द्र शाह, पृष्ठ, 82

19 अज्ञेय : वागर्थ का वैभव, रमेश चन्द्र शाह, पृष्ठ 79

20 वर्त्तमान साहित्य, अंक 5, अज्ञेय {आलेख} विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृष्ठ 98

21 अन्तरा, अज्ञेय, पृष्ठ 67

22 आलोचना का पक्ष, रमेश चन्द्र शाह,पृष्ठ 178

23 आलोचना का पक्ष, रमेश चन्द्र शाह, पृष्ठ 177

विशेष रूप से द्रष्टव्य

1 हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास -रामस्वरूप चतुर्वेदी

2 तारसप्तक - अज्ञेय